National Journal of Multidisciplinary Research and Development
ISSN: 2455-9040
Impact Factor: RJIF 5.22
www.nationaljournals.com
Volume 3; Issue 1; January 2018; Page No. 707-711

विकास के मॉडल का विमर्श और महुआ माजी का उपन्यास मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ

सौरभ कुमार यादव
पीएच.डी, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

प्रस्तावना

इक्कीसवीं सदी आरम्भ भारत के सन्दर्भ में न केवल राजनैतिक और सामाजिक रूप से बल्कि साहित्यिक के क्षेत्र में भी एक काल-विभाजक समय है. भूमंडलीकरण के नाम पर थोपी गयी नई आर्थिक नीति ने देश के दरवाजे देशी-विदेशी कार्पोरेट के लिए खोल दिए गये. नई आर्थिक नीति ने उदारीकरण, निजीकरण और बाजारवाद को विकास का पैमाना बताया. जबकि विकास का सवाल सिर्फ भारतीय राष्ट्र-राज्य के भीतर की शक्तियों से संचालित नही होता. वैश्विकरण के युग में यह एक वैश्विक सवाल है, जिसे हम मोटे तौर पर विकास किसका? और विकास किसकी कीमत पर? इन दो सवालों में संक्षेपित कर सकते हैं. उपनिवेशिकरण के दौर के साथ जो पश्चिमी विकास का मॉडल खड़ा हुआ है वह दुनिया भर के उपनिवेश बना लिए गये देशों की लूट की बुनियाद पर अब तक परवान चढ़ता रहा है. आज भी यूरोप-अमेरिका की उच्च जीवन शैली, समृद्धि और विकास दर तमाम एशियाई और अफ़्रीकी मुल्कों के प्राकृतिक संसाधनों की सतत लूट के बगैर बरकरार नही रखी जा सकती. यही प्रक्रिया जब भारत जैसे किसी देश के भीतर घटती है तो आंतरिक उपनिवेशिकरण की प्रक्रिया दिखाई देती है. प्रकृति पर आजीविका के लिए निर्भर समुदाय विध्वंश और विस्थापन का शिकार होते हैं और कॉर्पोरेट हितों के लिए तमाम तरह के राजनीतिक-कानूनी प्रावधान व नीतियाँ बनाकर, मुख्य धारा में समाहित करने के नाम पर तमाम समूहों को उनकी संस्कृति, जीवन पद्धति और पर्यावरण को अपरिवर्तनीय क्षति पहुचाई जाती है. ऐसे में विकास के मॉडल के विमर्श को सवाल के घेरे में लाने वाले तमाम उपन्यास आदिवासी अस्तित्व और अस्मिता एवं अन्य समुदाय के जीवन-संघर्ष या कॉर्पोरेट विकास की संस्कृति के विरुद्ध पर्यावरण और मनुष्य के अन्तरंग संबंधो पर आधारित वैश्विक विकास के लिए संघर्ष की तस्वीर पेश करते हैं. महुआ माजी का उपन्यास "मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ" इसी श्रेणी का उपन्यास है. इस उपन्यास का सम्बन्ध ना तो उस तरह से सिर्फ मध्यवर्ग से है, न ये उपन्यास अपनी सम्वेदना में महाकाव्यात्मक है और न ही इसका सम्बन्ध राष्ट्रीयता की किसी भावना से है. सच तो ये है की ये उपन्यास मुनाफे व प्रतिद्वंदिता की संस्कृति और सभ्यता तथा राष्ट्र के पूँजीवाद आख्यानो के विरुद्ध एक वैकल्पिक विश्व दृष्टि को आकार देने का प्रयास करते हैं

मरंग गोडा नीलकंठ हुआ महुआ माजी का दूसरा उपन्यास है,जो राजकमल प्रकाशन से 2012 में प्रकशित हुआ. इस उपन्यास में लेखिका ने विकास के मॉडल को केंद्र में रख कर युरेनियम खनन से फैलने वाले विकिरण, अयस्क से युरेनियम को अलग करने की प्रक्रिया के बाद निकले अपशिष्ट पदार्थो से होने वाले प्रदुषण और इन सबके फलस्वरूप विस्थापन से जूझते आदिवासियों के जीवन संघर्ष को अभिव्यक्त किया है. मरंग गोड़ा वास्तव में जमशेदपुर से तीस-चालीस कि.मी. दूर स्थित 'जादूगोड़ा' नामक वह क़स्बा है जहाँ सन 1967 में शुरू हुए यूरेनियम अयस्क खनन से आसपास के पंद्रह गावों के तीस हजार से अधिक लोग बुरी तरह विकिरण से प्रभावित हुए थे.यह जमीन स्वयं रेडियोधर्मी धातु यूरेनियम के जहर को पीकर देश दुनिया को ऊर्जा प्रदान करती है. संभवतः इसी वजह ने लेखिका को मरंग गोड़ा को नीलकंठ कहने के लिए प्रेरित किया होगा.

उपन्यास की कथावस्तु को में आदवासी समाज के जीवन के दो अलग-अलग समय देखने को मिलते है. पहला समय युरेनियम खनन शुरू होने के पूर्व का है तो दूसरा युरेनियम खनन शुरू होने के बाद का. पहले में आदिवासियों की सभ्यता और उनकी संस्कृति का परिचय मिलता है,जिसका प्रतिनिधि उपन्यास के नायक सगेन का दादा जाम्बीरा है तथा दुसरे खंड में मरंग गोडा के लोगो को युरेनियम खनन से होने वाले विकिरण,प्रदुषण और अंततः विस्थापन से संघर्ष करते देख सकते हैं, जिसका नायक सगेन है. इस उपन्यास की शुरुआत तो झारखंड के एक आदिवासी क्षेत्र से होती है, लेकिन उपन्यास के अंत तक यह वैश्विक हो जाता है और इसके बहस के केंद्र में भारत ही नही वैश्विक विकास का मॉडल भी आ जाता है.

झारखंड एक ऐसा राज्य है जहाँ आदिवासियों की संख्या सर्वाधिक होने के साथ-साथ प्राकृतिक संसाधनो का भंडार भी है. झारखंड को बिहार से पृथक राज्य बनाने के संघर्ष के पीछे यह कल्पना थी कि एक ऐसा राज्य स्थापित हो, जहां वन एवं खनिज संसाधनों पर आदिवासियों का मालिकाना हक और प्रभुत्व हो, लेकिन इसके ठीक विपरीत विकास के

नाम पर झारखंड में अंधाधुंध औद्योगीकरण और खनन गतिविधियों ने आदिवासी समुदाय की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्थिति को संकटमय बना दिया. झारखंड के अब तक के इतिहास को देखें तो यह स्पष्ट होता है कि इस राज्य में हमेशा से प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के संकेत मिलते हैं. चाहे वह औपनिवेशिक समय से हो या फिर अविभाजित बिहार का अंग होने पर या झारखंड राज्य के गठन के 17 वर्ष बीत जाने के बाद का समय. अभी भी यह प्रक्रिया अनवरत जारी है. प्रचुर मात्रा में प्राकृतिक संसाधन होने के बावजूद यह राज्य आज भी देश के सबसे पिछड़े राज्यों में शुमार है. आदिवासी बहुल इस राज्य की अधिकतर जनसंख्या पूरी तरह प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर है, लेकिन मौजूदा विकास के मॉडल ने झारखंड में आदिवासी समुदाय की विषम सामाजिक-आर्थिक स्थिति, नक्सलवाद, प्राकृतिक असंतुलन जैसी समस्याओं को पैदा किया है, जिससे उनकी स्थिति अत्यंत दयनीय और चिंताजनक होती जा रही है. वस्तुत आजादी के बाद झारखंड ही नही सम्पूर्ण भारत में विकास का जो ढांचा निर्धारित किया गया उसके कारण यहाँ के आदिवासियो को न सिर्फ लगातार विस्थापित होना पड़ा है बल्कि उनके भाषा,संस्कृति का भी लगातार ह्रास होता जा गया है. स्थिति यह है की आज उनको अपने अस्तित्व को बचाने का संकट खड़ा हो गया है. सत्ता द्वारा स्थापित विकास के इसी पूंजीवादी मॉडल को केन्द्र में रखकर महुआ माजी ने सम्पूर्ण उपन्यास की रचना की है.

उपन्यास की कथा का प्रारम्भ उपन्यास के नायक सगेन के दादा जाम्बिरा से समय से करती हुई लेखिका कहती हैं की "ये उन दिनों की बात है जब मरंग गोदा में सभी के हाथ पाँव बिलकुल सही सलामत थे. किसी का सिर असामान्य रूप से बड़ा या छोटा नही दीखता था. किसी की देह घिनौने घावों से बजबजाती नही थी. गाय-बकरियों के जबड़े, दांत या मसूड़े सड़कर गिरते नही थे"[2]. अर्थात मरंग गोडा का अभी का समाज इन सभी विकृतियों के साथ जीने को अभिशप्त है. अंग्रेजी शासंन काल से शुरू होकर मरंग गोदा की कथा 2011 तक आते आते अपने स्वरुप में वैश्विक हो जाती है. यद्यपि मरंगगोडा अभी भी उपन्यास केंद्र में होता है लेकिन उपन्यास का फलक विस्तृत हो जाता है. उपन्यास का कथानक नायक सगेन के दादा जाम्बिरा के समय से आगे बढ़ते हुए आदिवासी समाज के रीति-रिवाज, उनके पर्व-त्यौहार, उनकी सामुदायिक संस्कृति का सूक्ष्मतम विश्लेषण करते हुए धीमी गति से आगे बढ़ता है. उपन्यास की शुरुआत में ही जब लोहे और तांबे के खनन के लिए आदिवासियों को विस्थापित करने के साथ ही कानून बनाकर इनके जंगलो को भी सरकारी सम्पत्ति घोषित कर काटा जाने लगता है तो आदिवासी आंदोलित होते हैं और सवाल पूछते हैं कि "जंगल के बिना हम जियेंगे कैसे? हमारी झोपडी, खटिया बनाने की लकड़ी और रस्सी जंगल से ही आती है.जब धान नही होता तो जंगली फल-कंद-मूल आदि खाकर ही तो हम पेट भरते हैं. साल की लकड़ी और पत्तो के बिना शादी ब्याह से लेकर कोई भी संस्कार सम्भव है क्या?"[3]. लेकिन वहाँ का आदिवासी समाज जो जंगल के बिना जीवन की कल्पना नही कर पाता को अंतत सरकारी मशीनरी के सहयोग से खनन करने को अनुबंधित कम्पनियों द्वारा अपनी ही जमीन से बेदखल कर दिया जाता है और आजीविका के लिए प्रकृति पर निर्भर आदिवासी समाज अपने ही जंगलो-पहाडो पर लगी फैक्ट्रियो में मजदूर बनने को विवश हो जाता है. धीरे-धीरे मरंग गोड़ा में यूरेनियम खनन भी शुरू होता है और स्वाभाविक तौर पर इसके कारण विकिरण और प्रदूषण की समस्या बढ़ती चली जाती है. यूरेनियम और उसका कचरा मरंग गोड़ा वासियों के जीवन में लगातार जहर घोलता जा रहा है, यही नही मरंग गोडा में युरेनियम शोधन से निकलने वाले विकिरणयुक्त कचरे को निक्षेपित करने के लिया बनाया गया टेलिंग डैम भी मानको के अनुरूप नही है साथ ही साथ विडम्बना यह है की देश के अन्य हिस्सों से निकलने वाले विकीरणयुक्त कचरे को भी रेल के डिब्बो में भर-भर के मरंग गोड़ा में बने टेलिंग डैम में ही निक्षेपित किया जाता है. अशिक्षित और अन्धविश्वासी आदिवासी समुदाय विकीरण के खतरों से अनजान है और अपनी आजीविका के लिए बिना किसी सुरक्षा के इन्ही फैक्ट्रियों में काम करने को मजबूर है. सगेंन अपने दादा और दादी की रहस्यमय बीमारी से मौत के बाद अपने ताई के यहाँ मिशनरी स्कूल में आगे की पढाई के दौरान सिंहभूमि में आदिवासी हितों के लिए चलने वाले आंदोलनों में भी सक्रिय भागीदारी करने लगता है. बी.ए की पढाई के दौरान इलेक्ट्रीशियन की नौकरी के लिए दी जाने ट्रेनिग लेने के दौरान उसे युरेनियम से होने वाले विकिरण का पता चलता है, साथ ही उसे हिरोशिमा नागासाकी के परमाणु बम विस्फोट से लेकर चेर्नोबिल दुर्घटना की भी जानकारी प्राप्त होती है.तब उसे समझ आता है की उसके दादा और दादी की मौत किसी प्रकोप से नही अपितु युरेनियम के विकिरण से होने वाली बीमारी से हुई है और मरंगगोड़ा में अचानक से फैलने वाली बीमारियों के पीछे भी कोई डायन नही बल्कि खदानों से निकलने वाले युरेनियम के विकीरण ही है.वह इस बात को समझता है की यदि इन खतरों से मरंगगोडा के लोगो को सावधान नहीं किया गया तो इसके गंभीर परिणाम हो सकते हैं, यहाँ से सगेन का मरंगगोडा को बचाने का आन्दोलन शुरू होता है.विकास के प्रचलित धारणा पर सगेंन प्रश्न उठाता है "किसका विकास? कैसा विकास? हमारी यह धरती सोना उगलती है फिर भी हमारे लोग इतने गरीब? प्रदुषण की वजह से इन इलाको के लोगो की औसत आयु कितनी कम हो गयी है. उसका खामियाजा कौन देगा हमे? हमारी इस धरती से लोहा तो निकल कर चला जाता है देश-विदेश के कल कारखानों में दूसरो को समृद्ध करने, हमारे लोगो को क्या मिलता है?"[4] सगेन के प्रश्न किसका विकास? और कैसा विकास? पर बात करें तो पाते हैं की 21वीं सदी के डेढ़ दशक बीतने के बाद विकास के तय पैमाने जैसे प्रति व्यक्ति आय,सकल घरेलू उत्पाद आदि में तो उत्तरोत्तर वृद्धि दर्ज की जा रही है वही सिक्के का स्याह पक्ष यह भी है की अमीर और गरीब के बीच आर्थिक विसमानता

की खाई भी लगातार चौड़ी होती जा रही है.भारत सरकार द्वारा गठित अर्जुन सेन गुप्ता की रिपोर्ट के अनुसार "भारत में 77 फीसदी जनसंख्या ऐसी है जो 20 रूपये प्रतिदिन में गुजारा करती है"[5] तो बीबीसी की एक रिपोर्ट के अनुसार "उपर के दस प्रतिशत लोगो की आय नीचे के दस प्रतिशत लोगो की आय से 12 गुना अधिक है"[6]. यही नही लगभग नब्बे देशो में गरीबी, भुखमरी और अन्याय के खिलाफ काम करने वाली संस्था ऑक्सफैम के अनुसार "एक तरफ भारत दुनिया के तीसरे सबसे ज्यादा अरबपति धन कुबेरों का देश बन चुका है लेकिन साथ ही साथ इसके अंदर दुनिया की गरीब और भूखी आबादी का एक तिहाई हिस्सा भी शामिल है"[7]. उपर्युक्त रिपोर्टो के आधार पर हमे सगेन के प्रश्नों का उत्तर मिलता है. सगेंन के मित्र आदित्य श्री की मरंग गोड़ा की युरेनियम विकीरण से होने वाली त्रासदी पर बनी फिल्म के कारण सगेन द्वारा स्थापित मरंगगोड़ा आर्गेनाईजेशन अगेंस्ट रेडियेशन अर्थात मोआर का युरेनियम विरोधी आन्दोलन जब अंतराष्ट्रीय युरेनियम रोधी आन्दोलन के साथ जुड़ता है तो उन्हें पता चलता है की "युरेनियम के विकिरण की समस्या सिर्फ मरंगगोड़ा के आदिवासियों की समस्या नही है बल्कि पूरी दुनिया में जहां-जहा युरेनियम की खदाने हैं – अमेरिका, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रीका........ हर जगह के आदिवासी किसी न किसी रूप में पीड़ित हैं"[8]. इसीलिए इंडिजिनसवर्ल्ड समिट में जब यह प्रश्न उठता है की आखिर विकास भी तो करना है, जिसके लिए सस्ती बिजली बनानी ही है तो समिट को सम्बोधित कर रहे परमाणु वैज्ञानिक कहते हैं की "दुनिया में ऊर्जा का कोई ऐसा श्रोत नही है, जिसके अतिदोहन से प्रकृति को नुकसान ना पहुचे. सच्चाई तो ये है की दुनिया में कोई भी चीज सरप्लस है ही नही .... कोयले के प्रयोग से निकलने वाला कार्बन डाई ऑक्साइड वायुमंडल को गर्म करता है. इससे ग्लेशियर पिघलने लगते हैं और तबाही होने की सम्भावना बढ़ जाती है, विंड मिल द्वारा हवा के दोहन से पक्षियों तथा कीट पतंगो के मरने की सम्भावना बढ़ जाती है जिससे प्रकृति की सारी व्यवस्था चरमरा जायेगी, जल विद्युत् के लिए नदियों पर बड़े बाँध बनाने पड़ते हैं जिससे स्थानीय निवासी विस्थापित होते हैं और उनका परिवार उनकी संस्कृति नष्ट हो जाती है. व्यापक पैमाने पर सौर ऊर्जा के उत्पादन के लिए यदि रेगिस्तानो को सौर पैनल से ढक दिया जाय तो तापमान में बढोत्री न होने से उनके पास के समुन्द्र से मानसून के बादलो का आना बंद हो सकता है और हमें सूखे की मार झेलनी पड सकती है...... इसलिए ऊर्जा की खपत करने के अलावा और कोई चारा नही है एक निश्चित सीमा तक वायु तथा सौर ऊर्जा का उत्पादन स्वास्थ्य तथा पर्यावरण के लिए सुरक्षित हो सकता है लेकिन हमें तो और चाहिए ...और ! और ! और !"[9]. परमाणु वैज्ञानिक के माध्यम से महुआ माजी ऊर्जा की जरुतो को पूरा करने के लिए उपलब्ध सभी वैकल्पिक साधनों की सीमाओं की वैज्ञानिक तरीके से समीक्षा करती हैं. विकास के इसी अवधारणा की पड़ताल करते हुए आदित्य श्री कहता है "विकसित पश्चिमी देशों की तर्ज पर हमारे देश में जो बड़े बड़े माल बन रहे हैं. खिडकियां नही हैं उनमे. हर मौसम में चौबीसों घंटे AC और सैकड़ों बल्बों को जलाए रखने की जरूरत है.ऊपर जाने के लिए सीढियों का इस्तेमाल नही करना चाहते. हम सुविधाओं के गुलाम बनते जा रहे. हर कदम पर हमे भोग विलास के साधन चाहिए.हम भोग के लिए धरती का प्रकृति का एक-एक कण नोच लेना चाहते हैं. लेकिन हम भूल जाते हैं की हमारे लिए भोग विलास के साधन उपलब्ध करने की धरती की क्षमता सीमित हैं. धरती हमारे आवश्यकताओं की पूर्ति तो कर सकती है पर हमारे लालच की नही इसलिए यदि हम अपनी धरती, मानव सभ्यता, संस्कृति की रक्षा करना चाहते हैं तो हमे अपनी आदते बदलनी होगी, जीवन शैली बदलनी होगी, विकास के नए मॉडल की तलाश करनी होगी. एक ऐसा मॉडल जो जो इस धरती को बचा सके, हमारी सभ्यता को बचा सके,हमे बचा सके"[10]. महुआ माजी द्वारा इस उपन्यास में विकास के आदिवासी मॉडल की तलाश ही उन्हें अपने समकालीन उपन्यासकार रणेंद्र से अलग करती है.रणेंद्र भी अपने उपन्यासो में भी झारखंड के आदिवासी समुदाय की कहानी कहते हुए विकास के पूंजीवादी मॉडल को केंद्र में रखकर इससे आदिवासी जनजातियों की नष्ट होती जा रही सभ्यता और संस्कृति को प्रभावोत्पादक ढंग से दिखाते हैं लेकिन वे विकास के इस पूंजीवादी मॉडल के बरक्स कोई वैकल्पिक विकास का मॉडल नही देते.

लन्दन से माओवाद पर शोध करने आई प्रज्ञा के बहाने लेखिका ने विकास के नाम पर किये जा रहे शोषण और अन्याय को आदिवासी क्षेत्रों में माओवाद और नक्सलवाद के उदय से जोड़कर देखती हैं.सगेंन कहता है "यह कैसी विडम्बना है कि हमारी औरतें बाँझ हो रही हैं ...हमारे बच्चे विकलांक पैदा हो रहे हैं....हमारे लोग जवानी में ही कैंसर या टीबी से मर रहे हैं और हम इसके विरोध में आवाज उठाते हैं ...कोई कदम उठाते हैं तो देशद्रोही करार दिए जाते हैं! कमाल है !यह कैसा लोकतंत्र है? यह कैसी सी सभ्यता है?"[11]. आदिवासी समाज की वास्तविकता भी यही है की सदियों पूर्व से लेकर आज तक आदिवासियों का शोषण अनवरत जारी है बस समय-समय पर शोषकों के मुखौटे बदलते रहें हैं. अचानक से इन सीधे-सादे आदिवासियों के इतने हिंसक और नक्सली गतिविधियों में संलिप्तता का कारण जब प्रज्ञा जानना चाहती है तो आदित्य श्री बताता है कि "लोग चाहे इसे किसी भी रूप में लें, पर सच्चाई तो ये है की सन 1951 से 1990 के बीच इस देश में विकास के नाम पर करीब 85 लाख आदिवासियों को उजाड दिया गया. इनमे से तीन चौथाई का भी पुनर्वास नही हुआ रोजगार तो दूर,राज्य द्वारा उन्हें जीवनयापन की न्यूनतम सुविधाएं भी नही दी गयी.यही असंतोष नक्सली घटनाओं की वृद्धि का कारण बनी. कीमती खनिजो के खनन के लिए उनकी जमीन छिनी गयी जिससे दुर्गम पहाड़ी इलाकों में बसे होने के कारण गरीबी का दंश अब और झेल नही सकने के वजह से हथियार उठा लिए.यदि विकास का लाभ उन्हें समय रहते मिला होता तो मुझे नही लगता की स्थिति इतनी विकट होती"[12].

लेखिका सस्ती बिजली पैदा करने के करने के अलावा युरेनियम की सहायता से निर्मित एक अन्य उत्पाद परमाणु बम की विभीषिका की व्याख्या के साथ-साथ उसके प्रयोग के इतिहास से ले कर भविष्य में उसके सम्भावित प्रयोग से होने वाले विनाश की चर्चा भी विस्तार से करती हैं. जापान पर गिराए गये परमाणु बम की निशानी के बतौर बनाए गये हिरोशिमा पीस म्यूजियम में रखी निशानियो का वर्णन करते हुए लेखिका कहती है "पिघली हुई साइकिलें....काला जला अधखाया टिफिन ...जली हुई किताबे, आधे चेहरे वाली पिघली हुई बुद्ध की प्रतिमा....असंख्य मूर्त अमूर्त निशानियाँ तस्वीरों में जले हुए पिघले हुए इंसानी ढाचें ..पशु पक्षी ..पेड़ पौधे ...मेढक के छत्ते की तरह आसमान में फैले धुएं का रेला एक दिवार घडी जिसकी सुइया विध्वंश के मुहूर्त से अब तक एक ही जगह पर थमी हुई हैं! बिलकुल मूक! सावधान की मुद्रा में पूरी दुनिया को सचेत करते हुए ....."[13]. इसीलिए भारत द्वारा अमेरिका के साथ किये परमाणु समझौते का विरोध करते हुए सगेन कहता हैं कि "सस्ती बिजली की उपलब्धता से बड़े पूजीपतियों को तो प्रत्यक्ष रूप में कुछ समय के लिए बहुत फायदा होगा मगर आम लोगो को नुकसान ही ज्यादा होगा क्योकि विदेशों से रिएक्टर खरीदे जाने में न तो सावधानी बरती जाती है न ही उसके कचरे से उत्पन्न स्वास्थ्य समस्याओं के निराकरण का उचित प्रयास किया जायेगा इसलिए हमने इसका विरोध करके सही किया"[14]. वास्तविकता में भी हम देखे तो 2011 में जापान के फुकुशिमा संयंत्र में विस्फोट के साथ भारत सहित विश्व के अन्य देश जहाँ भी परमाणु रिएक्टर लगाये गये वहां उससे होने वाले विकिरण से फैलने वाली भयानक बिमारियों के कारण समाज का एक बड़ा तबका जागरूक हो गया है. यही वजह है की तमिलनाडु के कुडनकुलम से लेकर महाराष्ट्र के जैतापुर तक में ग्रामीण अपने क्षेत्र में परमाणु रिएक्टर लगाये जाने का विरोध ही नही कर रहे अपितु लाठी खाने, जेल जाने से लेकर देशद्रोह के मुकदमे भी झेल रहे हैं.

इसलिए विकास का पूंजीवादी मॉडल केवल आदिवासी समाज के अस्तित्व पर ही संकट नही ले आया है अपितु विकास की दौड़ में आगे निकल चुके तथाकथित सभ्य नगरीय समाज भी इसके दुष्प्रभाव से अछूते नही है. आदित्य श्री के माध्यम से जब लेखिका कहती है कि "हमारी चीख पुकार को अनसुना कर तुम लोग ज्यादा खुश मत होना. विकिरण कभी किसी का सगा नही होता. हम आदिवासियों को तबाह करने के बाद यह तुम्हारी बस्तियों की तरफ बढ़ सकता है"[15] तो उसका इशारा इसी समाज की तरफ है जो उन प्राकृतिक संसाधनों की खनन से मिलने वाली भैतिक सुविधाओं में तो हिस्सेदार है लेकिन उससे होने वाले नुकसान को लेकर उसे कोई कोई चिंता नही है क्योकि वो आदिवासी नही है. लेखिका के इस मन्तव्य को विस्तृत फलक पर देखे तो हम पाते हैं की पिछले डेढ़ दशको में प्राकृतिक आपदाओं की जो निरन्तरता देखने को मिल रही वैसा पहले के समय में नही था. सुनामी से लेकर भूकंप, बाढ़, सुखा जैसी प्राकृतिक आपदाएं जिस निरन्तरता में पिछले कुछ वर्षों से आ रही हैं वैसी निरन्तरता पिछले कई दशको में देखने को नही मिलती. जाहिर है इस प्राकृतिक असंतुलन के पीछे हमारा विकास का यही मॉडल है जिसमे हम पूंजी के लिए प्राकृतिक संसाधनों का दोहन बिना भविष्य की आने वाली पीढ़ियों के बारे में सोचते हुए अंधाधुंध तरीके से करते जा रहे हैं.

वैश्वीकरण बनाम प्रकृति की अवधारणा को समझने के लिए जाने माने ग्लोबल इन्वेस्टर जेरेमी ग्रेंथम कहते हैं कि "सभी संसाधनों के अंधाधुंध उपयोग से हमारी ग्लोबल अर्थव्यवस्थाए ऐसे कई संकेत दर्शा रही हैं जिनके कारण हमसे पहले कई सभ्यताए धराशायी हो चुकी हैं"[16]. माइक्रोसॉफ्ट संस्थापक बिल गेट्स ने पिछले दिनों प्रायश्चित करते हुए कहा कि "पूंजी को अब मानवीय चेहरे के साथ आना चाहिए"[17]. स्पष्ट है की पूँजी की वैश्विक भूमिका सदैव ही बहुसंख्यक मनुष्यों की विरोधी रही है. आज जब पूँजी का लगातार कुछेक हाथों में संकेन्द्रण होता जा रहा है ऐसेमें आज सवाल केवल आदिवासी समाज या भारत देश का नही है अपितु प्रकृति और अंततः पृथ्वी का है, इसलिए हम सबका है. जो तटस्थ रहेंगे वे भी नही बचेंगे, इसीलिए अपने जल,जंगल, जमीन और प्राकृतिक संसाधनों को बचाने की लड़ाई खुद लड़नी होगी. यही वजह है की उपन्यास के अंत में जापान के फुकुशीमा परमाणु संयंत्र में विस्फोट के बाद सगेन लिखता है "तुम विकसित लोगो के पास बेशक विकास के अलग अलग और उन्नत मॉडल हैं मगर हमे पूरा यकीन है की विकास का आदिवासी मॉडल ही इस धरती को बचा सकता है. वरना इस धरती पर हिम युग आने में देर नही लगेगी"[18]

सन्दर्भ

1. मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ,महुआ माजी,राजकमल प्रकाशन,संस्करण-प्रथम 2012
2. उपन्यास और लोकतंत्र, मैनेजर पाण्डेय,वाणी प्रकाशन,संस्करण 2013,पृष्ठ9
3. मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ,महुआ माजी,राजकमल प्रकाशन,संस्करण 2012,पृष्ठ11
4. वहीँ, पृष्ठ 212
5. वहीँ, पृष्ठ 317
6. https://en.wikipedia.org/wiki/Arjun_Kumar_Sengupt
7. http://www.bbc.com/news/business-32824770
8. https://www.oxfamindia.org/
9. मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ,महुआ माजी,राजकमल प्रकाशन, संस्करण2012,पृष्ठ222
10. वहीँ, पृष्ठ 345
11. वहीँ, पृष्ठ 345
12. वहीँ, पृष्ठ 249
13. वहीँ, पृष्ठ 337

14. वहीँ, पृष्ठ 245
15. वहीँ, पृष्ठ 368
16. वहीँ, पृष्ठ 382
17. समवेत,अंक जुलाई 2014,पृष्ठ 24
18. http://www.redpepper.org.uk/gates-unmasks-the-real-face-of-davos/
19. मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ,महुआ माजी,राजकमल प्रकाशन,संस्करण 2012,पृष्ठ401